- पुनर्मुद्रण जिनके संस्मरणमें-उनका परिचय -

श्रुतमपि जिनवरविहितं, गणधररचितं द्व्यनेकमपि भेदम् ।
अंगांगबाह्यभावितमनंतविषयं नमस्यामि ।।

जगत्‌में दीपक, विद्युत्, रत्न, चंद्र, सूर्य, आदि प्रकाशशील अनेक पदार्थ हैं, ये केवल बाहरके अंधकारको हरते हैं । ज्ञान-प्रकाश ही एक ऐसा अनुपम प्रकाश है जो अज्ञानतिमिर-नाशक है । हम बाह्य प्रकाशका उपयोग भी तभी कर पाते हैं, जब अंदर ज्ञान-किरणें हो । हमारा लौकिक जीवन जिस ज्ञानद्वारा चलता है उसके विकासके लिये बहुत साधन हैं किन्तु-

जेण रागा विरज्जेज्ज जेण श्रेयेसु रज्जदि ।
जेण मित्ति पभावेज्ज, तं णाणं जिणसासणे ।।

जिस ज्ञान द्वारा रागद्वेष दूर हो, जिससे मैत्री वृद्धिगत हो वह जिनशासनमें ज्ञान कहा गया है और वही ज्ञान प्रशंसनीय है । दि. जैन साहित्यमें षट्खंडागम और उसकी धवला टीका सर्वोपरि मान्य है । धवला टीका की १६ पुस्तकें जब अप्राप्य होने लगीं तब उनका पुनर्मुद्रण आरंभ हुआ । इस छठी पुस्तकके प्रकाशनका भार **बालब्रम्हचारिणी विद्युत्लता शहाने** वहन किया है । चि. विद्युल्लता बाल्यकालसे ही अपनी माता द्वारा धर्मसंस्कारसे संस्कारित थी । जो पहले केवल विद्युल्लताकी माँ 'माणिकबाई मोहोळकर' कहलाती थीं, किन्तु स्त्रीपर्यायमें सर्वोत्कृष्ट पद आर्यिका-दीक्षा दीर्घकाल धारण कर वे जगन्माताजी कहलायीं । चारित्र्यचक्रवर्ति आचार्य श्री. शांतिसागरजीके प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री. वीरसागरजी द्वारा क्षुल्लिका पद जयपूरमें १९५६में विभूषित कर **'चंद्रमति'** नाम पाया। उन्होंने यथानाम चंद्रमावत् उज्ज्वल संयमका पालन स्वयं तो किया ही, साथमें हमेशा सुपुत्रीको भी संयम-पथ के लिये प्रेरणायें देती रहीं । १९६० में सिद्धक्षेत्र गिरनारमें आचार्य श्री स्व. शिवसागरजी, द्वितीय पट्टाधीशके करकमलों द्वारा आर्यिका पद प्राप्त करके चंद्रमतिजी संघमें २१ सालतक सतत स्वाध्याय, और ध्यानमें लीन रही थीं। संघमें आ. कल्प श्रुतसागरजी महाराजजी धवलागमके अध्ययनमें विशेष रुचि रखते थे । संघस्थ मुनि-आर्यिकाओंके दर्शनार्थ एवं आहारदानादि हेतुसे पधारी हुई ब्र. विद्युल्लताजीको आ. कल्प श्रुतसागरजीने एक बार कहा "धवलाकी छठी पुस्तक (चूलिका) चाहिये । क्रमशः सभी आगम ग्रंथोंका स्वाध्याय करना है ।" ब्र. विद्युल्लताजीने सहज कह दिया "छठी पुस्तक उपलब्ध नहीं है ।" पू. महाराजजी विनोदमें कह गये 'आप उपलब्ध करा दो ना !' चंद्रमतिजीने उक्त कथन की पुष्टिमें कहा, 'गुरुको ना मत कहना, छपकर देना चाहिये ।' माताजी हर बार उसे दान, वैयावृत्य आदि में प्रेरितही करती थीं, जो कि इस जीवके लिये उभयलोकमें पाथेय स्वरूप है । (३० एप्रिल ७४ में टोंक नगरीमें माताजी की समाधि विशाल संघमें संपन्न हुई ।)वर्तमानमें प्रायः सभी मातायें अपनी संतानका मात्र शरीर-पोषण करके कर्तव्यकी इतिश्री मानती हैं लेकिन चंद्रमति माताजीने विद्युल्लताको लौकिक बी. ए. बी.टी. शिक्षा संपन्न बनाया और धर्म-शिक्षाके लिये सत्संग की महिमा बतलाकर उसे बाल्यावस्थासेही कारंजामें स्वयंके साथ गुरुदेव समंतभद्रजी और स्व. क्षु. जिनमतिजी की छत्रछायामें रखीं । सोलापुर स्थित क्षु. रा. दि. जैन श्राविकाश्रम, उनकी शिक्षाके साथ कर्मभूमि भी बनी रही ।

पं. पद्मश्री सुमतिबाईजीके भरोसे विद्युल्लता को धर्म-पथपर अग्रेसर देखकर माताजी स्वयं निराकुल हो गई थीं। वात्सल्यमूर्ति सुमतिबाईजीने भी प्रथम भाग का पुनर्मुद्रण करके नाम रोशन किया है। दोनों बहनोंकी आगम-सेवायें अनुकरणीय हैं। २५ साल पहलेकी संघ-स्मृति अब विद्युल्लताके ग्रंथप्रकाशनसे साकार परिणत हो गयी है। पूर्वपुण्योदयमें धन पाना और उसका उपयोग देव-गुरु-शास्त्रकी भक्तिमें होना-दोनों बातें प्रबल पुण्योदयसे ही होती हैं। ब्र. विद्युल्लताजीका सादा जीवन सोलापुर ही क्या सभी जैन संस्थाओं तथा संघस्थ साधुओंद्वारा प्रशंसनीय हो रहा है। उनके त्यागमय व्रती जीवनका उच्च आदर्श तथा उदात्त विचारोंद्वारा आश्रमस्थ कतिपय बालिकायें एवं महिलायें सतत लाभान्वित हो रही हैं, साधु-संघकी सेवासे प्रसन्नता ले रही हैं। ये कार्य आत्मोत्थानके लिये हैं। आपका मंगलमय उज्ज्वल जीवन अंतमें भी परम मंगलरूप हो यही मंगल-आशीर्वाद है।

श्रवणबेळगुळ
चातुर्मास १९९३

आर्यिका जिनमति
(पंचमपट्टाधीश आचार्य १०८ वर्धमानसागरजी संघस्था)